

मध्यप्रदेश ने भी लड़ी थी आजादी की लड़ाई



○ घनश्याम सक्सेना

स्वतंत्रता संग्राम आरंभ हो एक बार।
पिता से पुत्र को पहुँचे बार-बार।
भले हो पराजय यदा कदा।
पर मिले विजय हर बार।

- स्वातंत्र्य वीर सावरकर (1857 का स्वातंत्र्य समर)

हमारे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का प्रमाण-वर्ष 1857 है। इस काल को साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहासकारों ने मात्र 'बलवा' या 'सिपाही विद्रोह' निरूपित करने की कोशिश की किन्तु स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर (1803-1966 ई.) ने आजादी के इस महान संघर्ष का पुनर्पाठ करके इसके सूत्र सन् 1818 तक खोज निकाले। उन्होंने इसे 'एक पराधीन राष्ट्र का स्वाधीनता प्राप्ति का, अपने जन्मसिद्ध अधिकार की प्रस्थापना का अविचलित तथा अदम्य प्रयास' निरूपित किया था।

यह एक ऐसा संदर्भ है जिसमें सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम की अग्रिम कतारें मध्यप्रदेश में हैं। सन् 1861 में अंग्रेजों ने जिस सेन्ट्रल प्राविन्स

नामक प्रांत का गठन किया था, वर्तमान मध्यप्रदेश का अधिकांश भाग उसी में आता था। इस नए प्रदेश का गठन उस समय इसीलिये किया गया था क्योंकि 'सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम के बहुत से नायक मध्यप्रदेश के सघन वनों में सक्रिय थे' और उन्हें खोज-खोजकर समाप्त करने का काम कर्नल पियर्सन सहित अनेक अंग्रेज कमांडरों को सौंपा गया था।

त्रि-स्तरीय स्वाधीनता संग्राम

मध्यप्रदेश के स्वाधीनता-संग्राम की दास्तान वास्तव में त्रि-स्तरीय है। पहला कालखंड सन् 1865 तक का है जब अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र लड़ाई लड़ी गई। सन् 1818 के बाद का यही कालखंड सन् 1857 के महासंग्राम की भूमिका तैयार कर रहा था। दूसरा कालखंड (1900-1947) प्रदेश के ब्रिटिश-शासित क्षेत्रों का है, जहाँ आजादी की लड़ाई राजनीतिक दलों के नेतृत्व में लड़ी गई। तीसरा कालखंड उन 36 देशी रियासतों का है, जो मध्यप्रदेश के घटक तत्कालीन मध्यभारत और विन्ध्यप्रदेश में थी और जो सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद भी गुलाम थी और जहाँ राजा-नवाबों के शासन से मुक्ति के लिए भाँति-भाँति के सत्याग्रह किये गये। इनकी समाप्ति वास्तव में सन् 1949 में ही हो

सकी जब काफी ज़होज़हद और एक खूनी आंदोलन के बाद अंततः भोपाल रियासत का विलय भी भारतीय संघ में हो गया।

प्रेटणा-सोत अप्पा साहेब भौंसले

सन् 1818 तक के विवरण में मराठा शासक अप्पा साहेब भौंसले द्वारा 'अंग्रेजों की प्रेतछाया से मुक्त होकर स्वदेशी मराठा साम्राज्य की प्राचीन तेजस्विता और शक्ति की पुनः प्रतिष्ठा करने' से लेकर उनके अंग्रेजों की गिरफ्त से आजाद होने तक का अभियान बाकायदा दर्ज है। यह विवरण सर जॉन मेलकम के संस्मरणों के अतिरिक्त 'मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास' में (प्रधान संपादक : पं. द्वारका प्रसाद मिश्र) सविस्तार उपलब्ध है। 'अप्पासाहेब के पराभव के पश्चात मंडला, सिवनी, बैतूल और नर्मदा घाटी के जबलपुर, नरसिंहपुर तथा होशंगाबाद जिले अंग्रेजों ने हड्डप लिए थे। इससे दो वर्ष पूर्व लार्ड हेस्टिंग्ज ने 1 जून, 1816 को अपनी डायरी में लिखा : 'इस व्यवस्था से मुझे सुविधा हो गई है कि तीन सौ भीलों का वह सीमान्त जिसके लिए प्रतिरक्षा देने में मुझे कठिनाई होती थी, अब बिना चौकसी के छोड़ा जा सकता है।' लेकिन अप्पासाहेब ने अंग्रेजों के विरुद्ध गुरिल्ला छापामार युद्ध जारी रखा। वे सन् 1819 में ब्रिटिश गारद को चकमा देकर निकल गये थे। उल्लेखनीय है कि उन्हें पचमढ़ी की महादेव गिरि शृंखला में शरण मिली, जहाँ आदिवासियों ने उन्हें पूरा सहयोग दिया। जब अंग्रेजों की दबिश बहुत बढ़ी तो इन्हीं गोंड, कोरकू आदिवासियों ने अप्पासाहेब को निकलने में सहायता की। डॉ. पी. एस. मुखारया ने अपनी पुस्तक '1857 की क्रांति : सागर और नर्मदा क्षेत्र' में लिखा है- 'कड़े प्रतिरोध के बीच जनरल मार्शल ने इस भू-भाग पर आधिपत्य कर लिया... फिर भी अप्पा साहेब लंबे समय तक चुनौती देते रहे। अंग्रेजों ने उनकी गिरफ्तारी पर 1 लाख रुपये का इनाम घोषित किया...'। ज्ञाहिर है कि मध्यप्रदेश सदैव से स्वाधीनता संग्राम-सेनानियों की कर्मस्थली रहा है।

सन् 1824 में मध्यभारत की एक रियासत नरसिंहगढ़ के राजा सौभाग्यसिंह के तेरेस वर्षीय पुत्र राजकुमार चैनसिंह ने अंग्रेजों को दिन में तारे दिखा दिये थे। एक अंग्रेज अफसर जे. एच. मेडोक ने उन्हें तलब करने का दुःसाहस किया। चैन सिंह ने ब्रिटिश सरकार की अपमानजनक शर्त मानने से इंकार कर दिया। भोपाल स्टेट गजेटियर 1908 के अनुसार दिनांक 24 जून, 1824 को सीहोर के दशहरा मैदान में अंग्रेजों से भीषण युद्ध करते हुए कुंवर चैनसिंह अपने 44 साथियों सहित शहीद हो गये। आख्यान है कि सीहोर की छावनी में डेरा डालकर उन्होंने जो युद्ध



राजकुमार चैनसिंह

किया उसमें उनका सिर कट जाने के बाद धड़ भी युद्ध करता रहा। हरबोलों के युद्ध वर्णन में प्रशस्ति है

सीस कटायो ने घाट बंधायो, मुख पे उड़े रे गुलाल।
सीवर में डेरा डाल्या, तो धड़ से करयो है जुवाब।।

बुन्देला विद्रोह



मधुकर शाह जवाहरसिंह

मध्यप्रदेश के रक्त तिलक-अभिलाषी देशभक्तों ने अंग्रेजों को चैन से नहीं बैठने दिया तथा थोड़े-थोड़े अंतराल से बहुत विद्रोह हुए किन्तु सन् 1842-43 का बुन्देला विद्रोह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी शुरूआत सागर जिले के दो ठाकुरों-चंद्रपुर के जवाहरसिंह और नरहट के मधुकरशाह द्वारा की गई थी। सन् 1842 में इन दोनों ने अंग्रेजों के राजस्व विषयक आदेश की अवहेलना की। पुलिस चौकियों पर धावा बोला। पुलिस वाले भाग गये। यह विद्रोह जान-बूझकर उस समय किया गया था जब अंग्रेजों को अफगानिस्तान में भर्यकर पराजय का सामना करना पड़ा था और यह माहौल बन गया था कि वे अपराजेय नहीं हैं। बहुत से गोंड-प्रमुख भी इस क्रांति में शामिल हो गये थे। अप्रैल 1842 तक तो नरसिंहपुर, सागर और जबलपुर में इस क्रांति का संचार हो चुका था। जबलपुर विद्रोह के सरगना थे हीरापुर तालुके के राजा हिरदेशाह। श्री जे. पी. मिश्र ने अपनी पुस्तक 'द बुन्देला रेबेलियन' में लिखा है- 'इन लोगों ने, कुछ समय के लिए ही सही, नर्मदा-पार नरसिंहपुर, सागर, जबलपुर जिलों को अंग्रेजी सत्ता से मुक्त कराने में सफलता प्राप्त कर ली थी।' अंग्रेजों ने इस विद्रोह का बड़ी निर्ममता से दमन किया। शाहगढ़ के राजा बखतसिंह ने 22 दिसम्बर, 1842 को गद्दारी करके हिरदेशाह को सपरिवार पकड़वा दिया। नरहट के मधुकरशाह को फरवरी 1844 में गिरफ्तार कर उन्हें सार्वजनिक रूप से फाँसी दी गई। इस विद्रोह के निर्मम दमन से क्रांति की लौ कुछ समय के लिए ज़रूर कम हो गई किन्तु सन् 1857 में वह पुनः भड़क उठी।

दमन और शोषण

अंग्रेजों को ऐसा लगा था कि युद्धों में एन-केन-प्रकारेण विजय प्राप्त करके, जो क्षेत्र उन्होंने हड्डा था और जिसे सन् 1820 में 'सागर-नर्मदा क्षेत्र' की संज्ञा दे दी थी, वहाँ की जनता उन्हें अपना स्वामी मान

ले गी। सर जान मेलकम ने तो सेन्ट्रल इंडिया के अपने मेमोर्यर्स (सन् 1832) में साफ लिखा था कि 'हमारा पूर्वी साम्राज्य तलबार के बल पर जीता गया है और उसे पूरी ताकत से बनाये रखेंगे।' सांसद शशि थरूर ने अपनी पुस्तक 'एन इश ऑफ डार्कनेस : द ब्रिटिश एम्पायर इन इंडिया' में विस्तारपूर्वक अंग्रेजों द्वारा किये गये दमन और शोषण का वर्णन किया है- 'जीते गये इलाकों में जो अंग्रेज अफसर नियुक्त हुए उनकी संस्कृति तो मात्र बायबल, बोनेट और ब्रांडी की थी।... वे तो यह मान बैठे थे कि वे मानो कुम्हार थे और जनता उनके हाथों में गीली मिट्टी...' अंग्रेज समझते थे कि विभिन्न क्षेत्रों में कोई व्यवस्था नहीं थी और 'यहाँ के गंवार, कुपड़ और जंगली लोगों को सभ्य बनाना उनकी नैतिक जिम्मेदारी थी।' किन्तु यह अंग्रेजों का भ्रम था कि स्थानीय शासक लोक कल्याण का कोई काम न करके सिर्फ एशो-आराम का जीवन बिताते थे। सन् 1829 में कर्नल स्लीमेन ने 'जबलपुर क्षेत्र के शोभा और उपयोग के उन सर्वजनिक निर्माणों (कुएँ, तालाब, सिंचाई के साधन, सड़कें, आम्रकुन्ज, सरायें, मंदिर-मस्जिद आदि) का अनुमान पत्र तैयार कराया था, जो या तो स्थानीय शासकों ने बनवाये थे या फिर लोगों की दानशीलता का परिणाम थे... इनके निर्माण की अनुमानित लागत लगभग नौ लाख फौण्ड थी...'।

विदेशी आधिपत्य के विरुद्ध असंतोष

अंग्रेजों ने न सिर्फ गाँवों की प्राचीन स्व-पोषित व्यवस्था को ही भंग किया बल्कि समग्र आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संरचना को समाप्त कर दिया। राजस्व-निर्धारण इतनी ऊँची दरों पर किया गया कि 'बहुसंख्यक तालुकेदार, जर्मीदार और ठाकुर' भी कंगाल हो गये। सागर-नर्मदा क्षेत्र में भू-स्वामी मुख्यतः गोंड, लोधी और बुन्देला राजपूत-वंशी थे। सन् 1842 तक तो इनमें से अधिकांश लोग सरकारी कर न दे पाने के कारण 'नादिहन्द' घोषित कर दिये गये और इनकी सम्पत्तियाँ कुर्क कर ली गईं। अंग्रेजों के जोरो-जुल्म से पीड़ित यह इलाका 1857 की क्रांति के लिए तैयार बैठा था। 'मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास' शीर्षक पुस्तक में निष्कर्षतः कहा गया है- यह क्षेत्र मध्य-प्रांत का ठीक वही भाग था जिसने आगे सन् 1857 की क्रांति में प्रमुख भाग लिया। सरदार के. एम. पणिकरन ने अपनी किताब 'ए सर्वे ऑफ इंडियन हिस्ट्री' में लिखा है कि '...ईंधन तो तैयार था। फक्त एक चिंगारी की ज़रूरत थी।'

सन् 1857 की क्रांति

मध्यप्रदेश में सन् 1857 का स्वतंत्रता-समर दो ज़मीनों (फौजी और मुल्की) पर लड़ा गया। नीमच में अंग्रेजों की बड़ी फौजी छावनी थी। नीमच ब्रिगेड ने जो विद्रोह किया उसकी ऊँच तो दिल्ली तक पहुँची। दिनांक 13 मई, 1857 को मेरठ और दिल्ली के विद्रोह की खबर इंदौर रेजीडेन्सी में पहुँची और वहाँ से जंगल की आग की तरह फैल गई। झाँसी और ग्वालियर में 6 और 14 जून को विद्रोह की खबर ने इंदौर में वही काम किया, जो फ्रांसीसी क्रांति में बेस्टील के पतन ने किया था...। रुद्रांगशु मुखर्जी और ताप्ती राय ने लिखा है- नीमच से सीहोर तक

अंग्रेजों की देशी पलटनों ने विद्रोह कर दिया था... इस क्षेत्रीय स्वदेशी चेतना पर अधिकृत शोध का अभाव है...। ब्रिटिश इतिहासज्ञ टी.एस. होम्स ने 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्यूटिनी' में सआदत खाँ की रिपोर्ट को उद्धृत करते हुए लिखा- 'काली चीटियों ने लाल चीटियों का खात्मा कर दिया है...' यह वही सआदत खाँ हैं जिन्हें विद्रोहियों ने अपनी एक सेना



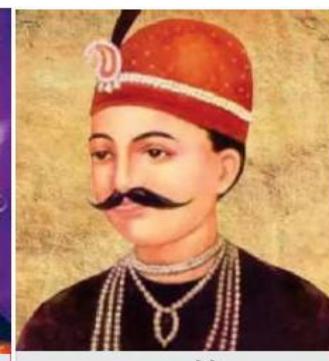
सआदत खाँ

का कमाण्डर चुना था। भोपाल की बेगम सिकंदरजहां ने तो अंग्रेज अफसर कर्नल ड्यूरेन्ड और उसके साथियों को होशंगाबाद भाग जाने की सलाह दी थी। बेगम खुद अंग्रेजों की सहायता कर रही थी। कर्नल ड्यूरेन्ड ने लार्ड एलफिन्स्टन को अपने पत्र में लिखा- 'जुलाई 1857 के प्रथम तीन दिनों में तो इंदौर में विद्रोहियों का राज था। रेजीडेन्सी का 9 लाख का खजाना उनके हाथ लगा। उन्होंने सड़कों पर मार्च किया और अपने कमाण्डर नवाब सआदत खाँ को सलामी दी'। विद्रोह के दमन के समय अंग्रेजों ने जो बदले का खूनी खेल खेला उसने तो तैमूर और चंगेज खाँ के क़त्लेआम को भी मात कर दिया। कई राजा-नवाबों को भी खुलेआम फाँसी पर लटका दिया।

अमझेरा (धार) के शासक राणा बख्तावर सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया और उन्हें पकड़कर 10 फरवरी, 1858 को इन्दौर में फाँसी दे दी गई। देवा क्षेत्र के ठाकुर दौलतसिंह को भी गुना छावनी में फाँसी पर लटका दिया गया।



बख्तावर सिंह



तात्या टोपे

विश्व के इतिहास प्रसिद्ध और अप्रतिम सेनापतियों में अग्रगण्य तात्या टोपे (1814-1859) ने इसी समय अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे। दुर्भाग्यवश नरवर के मानसिंह ने उन्हें धोखे से पकड़वा दिया और 18 अप्रैल, 1859 को अंग्रेजों ने शिवपुरी में उन्हें फाँसी दे दी। '...आप मुझे फाँसी पर लटका सकते हैं... परन्तु मेरे स्थान पर हजारों क्रांतिकारी उत्पन्न होंगे'- सावरकरजी ने अपनी पुस्तक में लिखा और इस वाक्य को तात्या टोपे का 'पैगम्बरी बोल' निरूपित किया।

शंकरशाह और रघुनाथशाह का बलिदान

स्वतंत्रता संग्राम की दूसरी जमीन अंग्रेजों से त्रस्त ठाकुरों, ज़मीदारों, मालगुज़ारों और सामान्य जनता ने तैयार की। यह अभियान सागर, दमोह, जबलपुर, नरसिंहपुर, मंडला, सिवनी, बैतूल आदि जिलों में फैल गया। 'इन्हें, प्राचीन राजवंश के प्रतिनिधि राजा शंकरशाह के रूप

में एक उत्साहवर्धक नेता भी मिल गया, जो गढ़ा मंडला के प्रख्यात गोंड राजवंश का था और जिनकी पूर्वजा थीं वीरांगना रानी दुर्गावती जो अपने राज्य की स्वतंत्रता के लिए सोलहवीं सदी में मुगलों से युद्ध करते समय

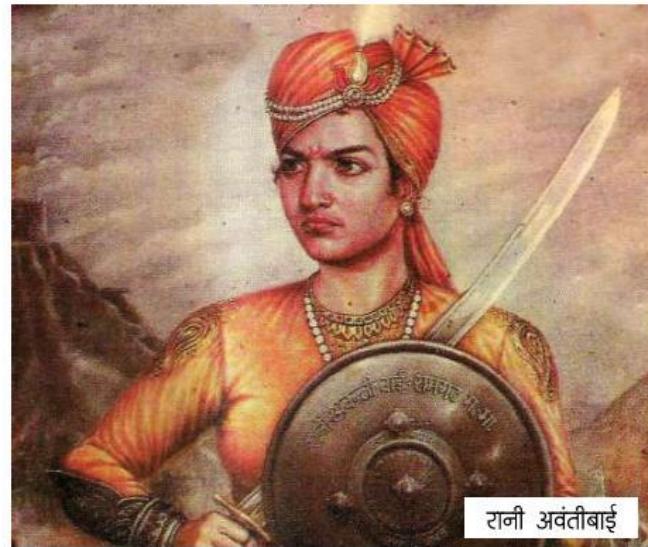
वीरगति को प्राप्त हुई थीं। शंकरशाह के घर में जो बैठकें होती थीं उनमें कानपुर, लखनऊ, दिल्ली आदि की भयंकर घटनाओं के समाचार पहुँचा करते थे। लोग बहुत दुःखी और उत्तेजित थे। शंकरशाह के पास तीन गाँवों की जागीर थी और वे स्वयं जबलपुर के पास पुरवा में रहते थे। शंकरशाह के आसन्न विद्रोह की अग्रिम सूचना अंग्रेजों को मिल गई थी। डिप्युटी कमिश्नर कप्तान क्लार्क ने शंकरशाह की गढ़ी पर हमला करके उन्हें तथा उनके पुत्र रघुनाथशाह को बंदी बना लिया। दोनों को तोपों के मुँह से बांधकर उड़ा दिया गया। शंकरशाह के विरुद्ध अपराध सिद्ध करने के लिए दो बातों का सहारा लिया गया- एक : उसकी तलाशी में कमिश्नर का वह पत्र मिला जिसमें सभी सरदारों को राजभक्त रहने के लिए कहा गया था। दूसरे : एक कविता मिली जो देवी कालिका की भक्ति में लिखी गई थी किन्तु जिसे अंग्रेजों ने विद्रोह भड़काने का मसाला माना। वह कविता निम्नांकित है

मुंद मुख डंडिन को चुगली की चबाई खाई
खुद डौर दुष्टन को शत्रु संधार का।
मार अंग्रेज रेजकर देइ मात चंडी
बचे नहिं बैरी बाल-बच्चे संधारका।
संकर की रक्षा कर दास प्रतिपाल कर
दीन की सुन आममाल हाल का
खाय लै मलेच्छन को झेल नाही करो अब
भक्षन कर तत्क्षन घौर मत कालिका।।

सन् 1857 के अक्टूबर मास के अंत में जब राजा शंकरशाह जैसे देशभक्तों के निर्मम दमन की घटनाएँ जन-मानस को आक्रोशित कर रही थीं, तभी जबलपुर जिले में विजयराघवगढ़ के युवा राजकुमार 17 वर्षीय सरजू सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठा लिए। कमिश्नर अर्सिकिन के प्रतिवेदन के अनुसार सरजूसिंह ने कलकत्ता और बम्बई की ब्रिटिश

छावनियों के बीच यातायात लगाभग अवरुद्ध कर दिया था। रीवा नरेश की फौजी सहायता से अंग्रेजों ने सरजूसिंह को पलायन के लिए मजबूर कर दिया किंतु वे निरंतर सक्रिय रहे। अंततः अंग्रेजों ने उन्हें सन् 1864 में गिरफ्तार कर लिया। उन पर अनेक जुर्म लगाये गये जिनमें तहसीलदार मीर साबित अली की हत्या का आरोप भी था। उनका राज्य जब्त करके उन्हें आजीवन देश निकाले का दंड दिया गया। इस दंडाज्ञा को स्वीकार करने के बजाय सरजूसिंह ने आत्महत्या कर ली।

रामगढ़ की रानी का बलिदान



रानी अवंतीबाई

डॉ. सुरेश मिश्र और भगवानदास श्रीवास्तव ने लिखा है कि मध्यप्रदेश के स्वतंत्रता संग्राम में शाहज़दा फिरोज़शाह जैसे एक बाहरी व्यक्ति का योगदान भी स्मरणीय है। यह 22 वर्षीय बहादुर नौजवान मालवा और बुन्देलखंड में सन् 1857 में सक्रिय रहा और फिर भारत छोड़कर विदेश चला गया।

मंडला जिले में रामगढ़ की रानी अवंतीबाई ने अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था। वे, रामगढ़ नरेश लक्ष्मणसिंह की पत्नी थी। उसने अंग्रेजों द्वारा नियुक्त अफसर को मार भगाया और पति की मृत्यु के पश्चात राज्यभार स्वयं संभाल लिया। अब अंग्रेजों से उनका खुला सामना था। उसके दमन के लिए 1 अप्रैल, 1858 को एक ब्रिटिश सेना रामगढ़ की ओर बढ़ी। यद्यपि उन्होंने बहुत दिनों तक छापामार युद्ध जारी रखा, किन्तु एक बार जब वे ब्रिटिश शिविर पर हमला कर रही थीं तो भारी भरकम फौजी दस्ते से घिर गईं। उन्होंने आत्म-समर्पण के बदले अपने एक सैनिक की तलवार लेकर स्वयं अपने सीने में उतार दी और वीरांगना रानी दुर्गावती की परंपरा में वीरगति प्राप्त की।

उल्लेखनीय है कि सागर-नर्मदा क्षेत्रों में ब्रिटिश-प्रतिरोध के केन्द्र ठीक वे ही स्थान थे जहाँ सन् 1842 में बुन्देला क्रांति हुई थी। सागर, दमोह, नरसिंहपुर, चांवरपाठा, तेंदूखेड़ा, हीरापुर आदि के ठाकुरों ने पंद्रह वर्ष पूर्व अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया था।

टंट्या भील का छापामार युद्ध

अंग्रेजों ने 1857 का स्वतंत्रता अभियान दबा दिया था, किन्तु भील जैसे छापामार लड़ाकों ने इस चिंगारी को बुझने नहीं दिया। 'जननायक टंट्या भील और आदिवासी आंदोलन' पुस्तक के लेखक बाबा भाण्ड ने लिखा है- टंट्या भील ब्रिटिश सत्ता के लिए आतंक का पर्याय बन गया था। ब्रिटिश रिकॉर्ड में उसका दिसम्बर 1878 से सक्रिय होना और दिसंबर 1889 में जबलपुर में फाँसी दिया जाना बाकायदा दर्ज है। वह समूचे निमाड़, झाबुआ, अलीराजपुर, धार और होलकर राज में ब्रिटिश विरोध का प्रेरक विन्दु था, तथा आज भी श्रद्धा और जनभावना है कि टंट्या भील आज भी लोगों के दिलों में जीवित हैं...।

सन् 1857 के विद्रोह के बारे में दो अंग्रेज इतिहासज्ञों की टिप्पणियाँ मनन करने लायक हैं : अर्नेस्ट जोन्स लिखते हैं कि हिन्दूस्तान के विद्रोह के बारे में सारे योरूप में सिर्फ एक ही राय होना चाहिये। विश्व में जितने भी विद्रोह हुए हैं उनमें यह सबसे न्यायपूर्ण, भद्र एवं आवश्यक विद्रोह है। जस्टिन मैकार्थी का कथन है कि यह भारत पर अधिकार करने वाले अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय घोषणा, धार्मिक उग्रता और सिपाहियों की शिकायत का संयुक्त रूप था जिसमें देशी राजा-नवाब भी शामिल हो गये... यह किसी भी तरह केवल बलवा या सिपाही विद्रोह नहीं था।

मध्यप्रदेश में स्वातंत्र्य समर की यह ज्वाला एक चिनगारी बनकर सन् 1920 तक दबी रही जबकि महात्मा गांधी (1869-1948) के अवतरण ने इसे सत्याग्रह आंदोलन का एक अद्भुत और सर्वथा नवीन रूप दे दिया।

भारत की आज्ञादी के लिए जो आंदोलन सन् 1920 के बाद मध्यप्रदेश में किया गया उसका क्षेत्र अधिकांशतः तत्कालीन सेन्ट्रल प्राविन्स यानी सी.पी. में महाकौशल इलाके के जिले रहे जो ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रत्यक्षतः शासित थे। किन्तु जहाँ तक वर्तमान मध्यप्रदेश का मुद्दा है उसमें बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और मध्यभारत की 35 देशी रियासतों के अलावा भोपाल की नवाबी रियासत भी शामिल है। इन देशी रजवाड़ों में एक अलग ही प्रकार का स्वतंत्रता आंदोलन हुआ जिसे प्रजामंडलों के तहत उत्तरदायी शासन की माँग के साथ मुख्यतः सन् 1930-1949 की अवधि में सम्पन्न किया गया।



टंट्या भील

अंग्रेजों द्वारा प्रत्यक्षतः शासित उक्त भू-भाग में ब्रिटिश सरकार का कितना आतंक था इसका मॉडल ब्रिटिश लेखक टिबेट कार्निंक ने अपनी किताब 'मेनी मेमोरीज' में प्रस्तुत किया है- '...कमरपेटी युक्त आदमी, कमरपेटी युक्त शासकीय चपरासी जो अपने कार्यालय का खुदा हुआ पीपल का बिल्ला या चपरास धारण करता है, संभवतः अधिकांश गाँव वालों के लिये सदैव आतंक बना रहेगा...'।

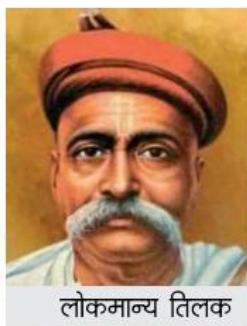
नौकरशाही का भ्रष्टाचार

राजस्व, जंगल और कृषि संबंधी कानूनों ने जहाँ जनता को परेशान कर रखा था वहीं पुलिसकर्मियों सहित निचले स्तर के सरकारी कारिन्दे अपने अधिकारों का घोर दुरुपयोग करके जनता को प्रताड़ित करते थे। चूंकि अंधे कुओं में गिरकर लोग मर जाते थे अतः सरकार ने ऐसे सूखे-अनुपयोगी कुओं को भरने का आदेश दिया। आपदा में अवसर ढूँढ़ने वाले कर्मियों ने इस मौके का फायदा उठाया। पुलिस के दरोगा ने गाँव में जो मुनादी करवाई उसमें 'अनुपयोगी सूखे कुएँ' विषयक शब्दों का उच्चारण ही नहीं किया। अब गाँव वाले समझे कि सरकार हमारे सारे कुएं पुरवाने-भरवाने पर उतारू है। गाँव वालों ने दरोगा से बहुत विनती की कि उनके कुएं न पुरवाये जाये। दरोगा के छल की कहानी स्वयं रिबेट कोर्नेक के शब्दों में : 'दरोगा ने कहा कि मुझे तो एक ही रास्ता सूझता है, आपके कुएं न पुरवाने से मेरी पेन्शन खतरे में पड़ जायेगी। इसलिये मैं कोई कारोबार करना चाहता हूँ जिससे भरण-पोषण हो सके। मैं साहबों और उनके मूर्खतापूर्ण आदेशों से निवटता रहूँगा। आपके इलाके में 500 कुएँ हैं, और इसका मतलब है चार रुपया प्रति कुआं, समझो ! तब अपने कुओं को चालू रखो और साहबों को जो जी में आये करने दो...।' इस प्रकार उस दरोगा ने गाँव के मुखियों की रजामंदी से अपने लिए दो हजार रुपये का जुगाड़ कर लिया। यह तो भ्रष्टाचार की एक मामूली सी कहानी है। लेकिन ऐसे उदाहरणों की भी भरमार थी जब जनता को प्रताड़ित करके पैसा ऐंठा जाता था। जनता में घोर असंतोष और आक्रोश था। अभिव्यक्ति की प्रतीक्षा थी। देशी रियासतों की स्थिति तो बहुत बुरी थी। लेकिन चूंकि सन् 1857 के बाद अंग्रेजों ने ही उन्हें बनाया या बचाया था, अतः अपने स्वामिभक्त पिट्ठुओं के रूप में अंग्रेज उन्हें बनाये रखना चाहते थे। लार्ड केनिंग ने सन्

1860 में लिखा था- ‘...सर जॉन मेलकम द्वारा बहुत पहले कहा गया था कि यदि हम अपने अधीनस्थ समस्त भू-भाग को जिलों में बाँट दें तो हमारा साम्राज्य पचास साल भी मुश्किल से टिकेगा। मगर यदि हम राजनीतिक शक्ति से शून्य परन्तु राजकीय अस्त्र के रूप में देशी रियासतों को कायम रख सकें तो हम भारत में तब तक रह सकते हैं जब तक कि हमारी समुद्री सत्ता बरकरार है...।’ अंग्रेजों ने भूमि सुधार की आड़ में जो बंदोबस्त किया उसने भी जनाक्रोश को बड़े पैमाने पर जन्म दिया। लगान की जो रकम तय की गई वह जर्मीदारों को प्राप्त होने वाले लगान से दोगुना-चौगुना थी। छोटे किसान तो छोड़िये बड़े मालगुजार भी तबाह हो गये। गाँव के उद्यम-उद्योग समाप्त होने लगे। ब्रिटिश दासता के बहुआयामी दुष्प्रिणाम हुए। इसे ‘स्वाधीनता संग्राम के इतिहास’ में विस्तारपूर्वक व्याख्यायित किया गया है। अंततः क्षुब्ध जनता को महात्मा गांधी और उनकी राजनीतिक-सामाजिक संरचना में एक मसीहा मिल ही गया।’ आगामी कई दशकों तक ब्रिटिश सरकार से सहानुभूति और न्याय की मांगें की जाती रही।

राजनीतिक जनजागृति

मध्यप्रदेश में पहला प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन सन् 1906 में जबलपुर में हुआ। सर गंगाधर राव चिट्ठनवीस इसके अध्यक्ष थे। लोकमान्य तिलक की गणेशोत्सव की अवधारणा ने एक संगठित जनजागृति को जन्म दिया। मध्यप्रदेश में पहली बार होशंगाबाद के अलावा रेलवे की अधिकार सीमा में बीना और भोपाल में इन उत्सवों का आयोजन किया गया। मंडला में तिलक एवं शिवाजी के चित्र प्रदर्शित करने की अनुमति सरकार द्वारा न देने के नतीजतन कुछ रोष प्रदर्शन होना उस समय की एक उल्लेखनीय घटना है।



लोकमान्य तिलक

स्वराज आंदोलन

सन् 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हो गई थी, किन्तु स्वराज आंदोलन ने कांग्रेस के सन् 1917 के अधिवेशन के बाद ही गति प्राप्त की। लेकिन स्वराज-आंदोलन के नेताओं को छिंदवाड़ा में रोक दिया गया। तिलक जी जब जबलपुर पहुँचे तो उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। उसी समय बंगाल में हुई आतंकवादी घटनाओं के तारतम्य में जबलपुर में तलाशियाँ हुईं। अन्य लोगों के साथ एक क्षय-पीड़ित देवीचरण सिंह को गिरफ्तार किया गया, जिसकी सन् 1918 में मृत्यु हो गई। उसके सामान में एक स्वरचित कविता मिली जिसमें अंग्रेजों के प्रति जनता की बेबसी तथा जनाक्रोश की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी।

सन् 1918 में कलकत्ता से लौटते हुए तिलक जी का 6 फरवरी को खंडवा में भव्य स्वागत किया गया। उहोंने हिन्दी में भाषण किया जिसका शब्दशः पाठ ...स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में उपलब्ध है। उहोंने मध्यप्रदेश का विस्तृत भ्रमण किया। सन् 1920 से जिला सम्मेलनों का प्रारंभ हुआ जिनमें स्वराज की धारा प्रवाहित करने के



जबलपुर का झंडा-सत्याग्रह

अलावा साम्राज्यिक सद्भाव की अपील भी की गई। स्वयं महात्मा गांधी ने तीन बार मध्यप्रदेश की यात्रा की जिनमें दो यात्राएँ तो इन्दौर में ही थीं। सत्याग्रह आंदोलनों से यह ध्वनि निकलने लगी कि ‘भारत की जनता स्वराज स्थापित करने के लिए कृत संकल्पित है...।’ सन् 1921 में जबलपुर में एक विराट सम्मेलन हुआ जिसमें सेठ गोविंददास ने अध्यक्षीय भाषण किया। सागर में भी एक सम्मेलन हुआ। इसमें सामूहिक सत्याग्रह प्रारंभ करने का प्रस्ताव पास किया गया। पं.

अर्ज मुतलक न सुनी, न सुना दर्द-जिगर,
हक से फरियाद करूँगा मैं बरोजे महशर।
तलक्ष्मी-हक की गरीबों के सज्जा पाओगे,
आज बेकस हैं, पर उस रोज़ कहां जाओगे?

माखनलाल चतुर्वेदी और माधवराव सप्रे ने जबलपुर में ‘कर्मवीर’ समाचार-पत्र के रूप में एक सशक्त साधन की स्थापना पहले ही कर दी थी। खांडेकर ने सागर में तथा उमाकांत घाटे और साल्पेकर ने छिंदवाड़ा में जन-समर्थन जुटाया। अगले वर्ष गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद समूचे मध्यप्रदेश में व्यापक रूप से सत्याग्रह हुआ।

स्वराज अभियान को आगे बढ़ाने में जबलपुर का 18 मार्च, 1923 का झंडा-सत्याग्रह एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। कांग्रेस ने चरखायुक्त तिरंगे झंडे को राष्ट्रध्वज अंगीकार किया था। जबलपुर नगर पालिका भवन पर यही झंडा फहरा दिया गया। पुलिस ने झंडा उतारने का आदेश दिया और ध्वज का अपमान किया। इसके नतीजतन जनाक्रोश का सैलाब फूट निकला। पं. सुन्दरलाल, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान उनके पति लक्ष्मण सिंह चौहान सहित अनेक नेता गिरफ्तार किये गये। जुर्माने और जेल यात्राओं का दौर चल निकला। परिणामतः झंडा आंदोलन का विस्तार मध्यप्रदेश के अनेक जिलों में हो गया। एक ध्वज गीत बच्चे-बच्चे की जुबान पर था।

नहीं रुकेगा नहीं झुकेगा, कौमी झंडा कभी नहीं।
भारत भर की राष्ट्र पताका झुक सकती क्या? कभी कहीं।
वीर शीस बत्तीस कोटि पर कौमी झंडा खड़ा हुआ।
इसकी रक्षा हेतु वतन का बच्चा-बच्चा अड़ा हुआ।।।



गंजन सिंह कोरकू

जंगल सत्याग्रह

सन् 1930 का वर्ष सविनय अवज्ञा आंदोलन का तिलक-वर्ष था। गाँधीजी ने दांडी में 6 अप्रैल, 1930 को नमक कानून तोड़ा। मध्यप्रदेश में यह आंदोलन फैल गया। जबलपुर में सेठ गोविंददास और पं. डी. पी. मिश्रा के नेतृत्व में एक विशाल चल-समारोह आयोजित किया गया, जो वीरांगना महारानी दुर्गावती की समाधि तक गया। इसी समय जबलपुर की एक विशाल सभा में अपार जनसमूह के समक्ष 'रणभेरी बज चुकी वीरवर, पहनो केसरिया बाना' गीत गाया गया।

इसी दशक में केवल मध्यप्रदेश में एक विलक्षण आंदोलन 'जंगल सत्याग्रह' के नाम से हुआ। इसके पीछे एक समूचा फलसफ़ा था जो गाँधीजी के नमक-सत्याग्रह से प्रभावित था। गाँधीजी ने नमक कानून इसलिये तोड़ा था क्योंकि नमक एक स्वदेशी संसाधन था जिस पर विदेशी बंदिश लगाई गई थी। मध्यप्रदेश में समुद्र न होने से नमक सत्याग्रह तो नहीं किया जा सकता था किन्तु नमक की ही भाँति यहाँ जंगल एक विशुद्ध स्वदेशी संसाधन थे जिन पर विदेशी सरकार ने बहुत सी बंदिशें लगा दी थी। वनों पर बंदिशें लगाने का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव आदिवासियों पर पड़ा। अतः उन्होंने इस जंगल सत्याग्रह में बढ़-चढ़कर भाग लिया। सत्याग्रह की जो गतिविधि अभी नगरों-कस्बों तक ही सीमित थी, वह

अब सुदूर अंचल के वन बहुल और आदिवासी-विपुल क्षेत्रों तक विस्तारित हो गई। यह एक स्वयंभू और स्वस्फूर्त आदिवासी नेतृत्व था।

बैतूल में इस सत्याग्रह का नेतृत्व दीपचंद गोठी ने 1 अगस्त, 1930 को किया था। उनके नेतृत्व में आदिवासियों ने हसिये से रिजर्व फॉरेस्ट में घास काटकर सत्याग्रह का शुभारम्भ किया था। दिसम्बर 22 अगस्त, 1930 को बैतूल जिले के आदिवासी ग्राम बंजारी ढाल में गंजन सिंह कोरकू के नेतृत्व में भीषण जंगल सत्याग्रह सैकड़ों वनपुत्रों ने किया। इसमें 500 से अधिक आदिवासी उपस्थित थे। अगले दिन 800 लोग थे। पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें कोरवा गोड़ शहीद हो गया। गंजन को पचमढ़ी क्षेत्र से गिरफ्तार करके पाँच साल के कठोर कारावास का दंड दिया गया। विष्णु सिंह को गिरफ्तार करके मृत्युदण्ड दिया गया। गोली चालन के स्थल पर, जो गाँव से कोई दो फलांग की दूरी पर स्थित है और जहाँ शहीदों का खून गिरा, लगभग दो मीटर ऊँचा एक स्तम्भ बना दिया गया है।

ओरछा में भी जंगल-सत्याग्रह हुआ था, जिसका नेतृत्व पं. लालाराम बाजपेयी ने किया था। ओरछा के वन वैसे भी चंद्रशेखर आज्ञाद की क्रांतिकारी उपस्थिति से तपःपूत हो चुके थे। सिवनी जिले में यही सत्याग्रह सिवनी नगर से 54 किलोमीटर दूर दुरिया ग्राम में हुआ था। यहाँ एकत्रित आदिवासियों के विशाल जनसमूह पर सिवनी के

कलोकटर सीमेन के आदेश पर दरोगा सदरुद्धीन ने गोली चलाई जिसमें तीन महिलाएँ और एक पुरुष शहीद हो गये।

'असमान विधि, प्रमादी तथा हठी अधिकारी, असहाय किन्तु विरोध करने वाली जनता जो केवल न्याय की मांग करती है- ये वे परिस्थितियाँ हैं जिनमें सत्याग्रह आवश्यक हो जाता है'- गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रही आंदोलनों की आवश्यकता और औचित्य को स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में इन शब्दों में व्याख्यायित किया गया है।

सन् 1942 में वह घड़ी भी आ गई जब एक निर्णायक आंदोलन होने वाला था। सरकार ने मध्यप्रदेश के प्रत्येक जिले में सरकार विरोधी लोगों की सूचियाँ तैयार करवाना शुरू कर दिया। आंदोलित जनता 'विद्रोह' और 'विल्लव' जैसे शब्दों का प्रयोग कर रही थी जबकि गांधीजी अहिंसा को धर्म के रूप में स्वीकार करने पर बल दे रहे थे। 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन का श्रीगणेश हो रहा था। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद आंदोलन जनता के ही हाथ में था। एक विलक्षण जन-आंदोलन प्रत्येक जिले में एक साथ प्रारंभ हो गया। दमन चक्र चला। लाठी-गोली चली। कई स्थानों पर तो सेना को भी बुलाना पड़ा। घटनाक्रम ने इतना

गंभीर रूप धारण कर लिया कि स्थानीय अधिकारी असहाय दिखने लगे। क्रांतिकारी भूमिगत हो गये। ठाकुर निरंजन सिंह ने आंदोलन का संचालन करने के लिये एक वैयक्तिक व्यापारिक कोठी से महाकौशल कांग्रेस समिति की निधि प्राप्त की। खून खराबा हुआ। दिसम्बर 1942 के अंत तक लगभग साठ हजार व्यक्ति पकड़े गये। कुल 940 शहीद हो गये और 1 हजार 600 घायल हुए। सुरक्षा बलों ने 540 बार गोली चलाई। बैंत से मारने की सज्जा 958 व्यक्तियों को दी गई।

दिनांक 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया। शेष तो इतिहास है। मगर देश आजाद होने के बाद भी देशी रियासतों के राजा नवाब अंग्रेजों के पिट्ठू बने रहे। भारत के लोग स्वतंत्रता के महाहौल में साँस ले रहे थे लेकिन मध्यप्रदेश की 36 रियासतों की जनता तो गुलामों की गुलाम थी। राजा-नवाब अंग्रेजों के गुलाम थे और जनता उनकी गुलाम थी। कवि फकीर खाँ की कविता की दो पंक्तियाँ अधिकतर

रियासतों में मशहूर हो गई थी

गोरन केर गुलमटा राजा और हम इनके गुलाम।

खान फकीरे कां लों कइये हम तो दोहरे गुलाम।।

देशी रियासतों का पेंच

भारत के स्वतंत्र होने के बाद अधिकांश रियासतों का यह विचार था कि चूंकि उनकी आधीनता पेरामाउंट पॉवर ब्रिटिश राज से थी और चूंकि वह सत्ता अब समाप्त हो गई है अतः रियासतें भी स्वतंत्र हैं। रियासतों के इस पेंच को ब्रिटिश अफसर कोनरेड कोरफील्ड ने यह कहकर और उलझा दिया कि 'महाराजाओं की शक्तियाँ तो ब्रिटिश ताज को समर्पित थीं। ब्रिटिश सत्ता की समाप्ति के बाद वे शक्तियाँ उन्हें स्वतः मिल जाती हैं। अब वे आत्म-निर्णय कर सकते हैं कि भारत में रहे या पाकिस्तान में या फिर स्वतंत्र'। इसका सशक्त उत्तर डॉ. राधाकृष्णन ने दिया- 'भारत की सम्प्रभु ब्रिटिश सत्ता विजयोपरांत बनी थी। जब वही सत्ता संवैधानिक प्रजातंत्र को हस्तांतरित हो गई तो फिर उस पर निर्भर तत्व भी स्वतः हस्तांतरित हो गये।' रियासतों के पेंच को अंग्रेजों ने यह कहकर उलझा दिया कि भारत में



सत्ता-हस्तांतरण के समय हमें हिन्दू-मुसलमानों के साथ-साथ देशी रियासतों के हितों का भी ध्यान रखना होगा।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटिश भारत में आंदोलन में उलझी रहने के कारण रियासतों के प्रति उदासीन थी। उसका विचार था कि रियासतों में राजा-नवाबों की दासता से मुक्ति का जन-आंदोलन स्वयं रियासतों के अंदर से ही आना चाहिये। राजे-नवाब कांग्रेस के नाम से चिढ़ते थे। अतः अधिकतर रियासतों में कांग्रेस-प्रेरित प्रजामंडलों की स्थापना हो गई। बाद को कांग्रेस ने भी देशी राज्य लोक परिषद को स्थापना की, जो रियासतों में उत्तरदायी शासन के लिये होने वाले आंदोलनों को प्रायोजित-समायोजित करती थी।

मध्यप्रदेश में कुछ 36 रियासतें थीं (बघेलखंड-बुन्देलखंड की 35 और भोपाल) जिनके राजा-नवाबों की राजसत्ता वंशगत होने के कारण वे किसी अन्य के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। ब्रिटिश-भारत के लोग जहाँ 'नागरिक' कहे जाते थे वहाँ रियासतों के लोग 'प्रजा'।



राजा-नवाबों की भी एक संस्था थी चेम्बर ऑफ प्रिन्सेज़ या नरेश मंडल। यद्यपि इसकी स्थापना अंग्रेजों के इशारे पर ही हुई थी किन्तु कभी-कभी ये संस्थान स्वयं ब्रिटिश भारत पर भी दबाव की राजनीति करता था। भोपाल के नवाब सर हमीदुल्लाह खान दो बार नरेश मंडल के अध्यक्ष रहे। उनके संबंध सभी नेताओं और अंग्रेजों से बहुत अच्छे थे। व्यवहारत: उनकी हैसियत उनकी रियासत के रकबे और राजस्व से भी बहुत ज्यादा थी। संभवतः यही वजह है कि जब अधिकांश रियासतें उत्तरदायी शासन के आंदोलनों के फलस्वरूप सन् 1948 तक भारतीय संघ में विलीन हो गई तब भी भोपाल स्वतंत्र बना रहा और उसका विलय अंततः सन् 1949 में एक खूनी आंदोलन के बाद ही हो पाया।

उत्तरदायी शासन के लिए आंदोलन

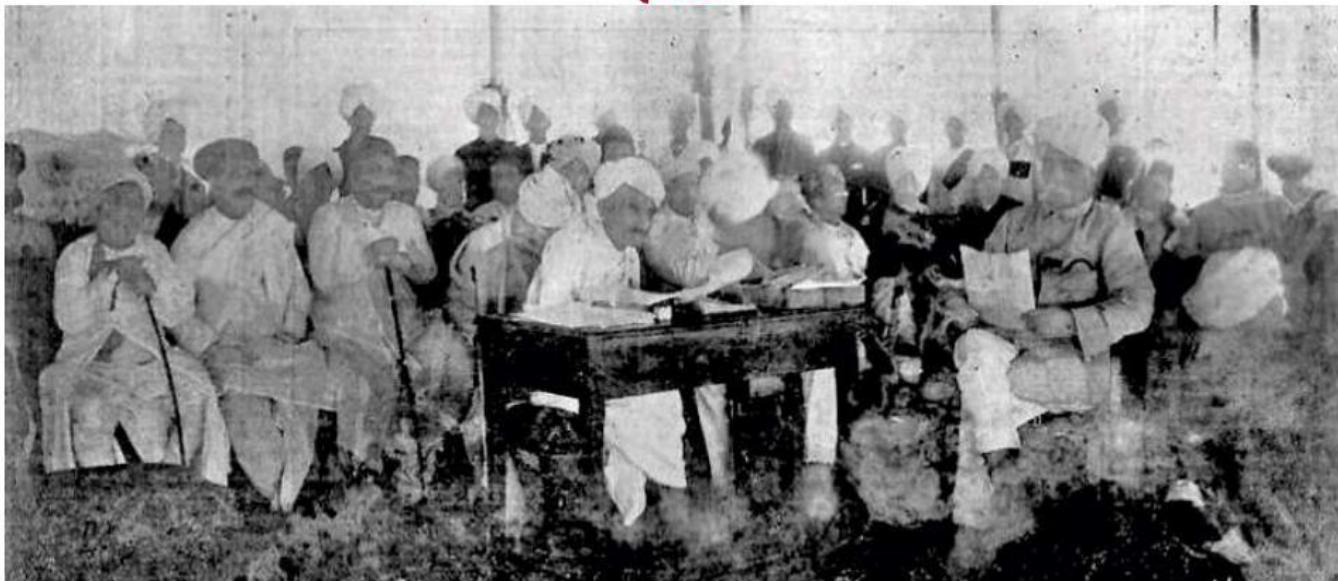
मध्यप्रदेश की जो रियासतें उल्लेखनीय हैं, वे थीं ग्वालियर, इंदौर, रीवा, ओरछा, पन्ना, छतरपुर, दतिया, राजगढ़, धार, झावुआ, रतलाम, देवास, नरसिंहगढ़ आदि। इन सभी रियासतों के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को, जो प्रजा मंडलों के तहत सक्रिय थे, सन् 1945 में ही यह पक्का विश्वास हो गया था कि जब देश की स्वतंत्रता अवश्यं भावी है तो फिर इन रियासतों को भी देर-सबेर भारत-संघ में ही विलीन होना पड़ेगा। सन् 1930 से प्रारम्भ होकर सन् 1940 तक लगभग सभी रियासतों में प्रजा मंडलों की स्थापना हो गई थी जिनके तहत स्थानीय

नेतृत्व उभरने लगा था।

लगभग सभी रियासतों में छोटे-बड़े पैमाने पर उत्तरदायी शासन के लिए आंदोलन हुए। इनका संक्षिप्त उल्लेख किये बगैर मध्यप्रदेश के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास अधूरा ही रह जायेगा। यह सखेद कहना होगा कि बहुत कम राजा-नवाब ऐसे थे जिनमें राष्ट्र की अवधारणा या देश प्रेम की भावना रही हो। 'धन और धरती बँटकर रहेंगे' का नारा भले ही लोकप्रिय रहा हो किन्तु हार्ड फेक्ट तो यही है कि कोई भी राजा-नवाब अपनी रियासत भारतीय संघ में मिलाकर राजसत्ता त्यागने को तैयार नहीं था, जिस पर वे अपना दैवी अधिकार मानते थे और जिसे बचाने के लिए हर संभव राजनीतिक-संवैधानिक हथकंडा अपनाया गया। इन सभी प्रतिरोधों की तोड़ सर जॉन मेलकम के इस वक्तव्य में थी कि 'सन् 1857 के बाद भारत का जो राजनीतिक नक्शा बना उसमें कोई भी रियासत संप्रभु नहीं थी... मध्यभारत की रियासतों की सीमाएँ तो हमने बनाईं। इन रियासतों को या तो हमने बनाया या फिर बचाया...।'

सरदार पटेल की राजनीतिक इच्छा-शक्ति, उनके सचिव वी.पी. मेनन की प्रशासनिक और संवैधानिक सूझ-बूझ तथा देशी रियासतों के अंदर से उभरे प्रजा मंडल आंदोलन ने एक ऐसे भारत का एकीकरण सुनिश्चित और सुदृढ़ किया जो 15 अगस्त, 1947 को विभाजन का त्रास पहले ही झेल चुका था।

इन्दौर



मध्यप्रदेश की रियासतों में इन्दौर, ग्वालियर, रीवा, भोपाल को छोड़कर शायद ही कोई रियासत ऐसी रही हो जहाँ संवैधानिक या राजनीतिक संस्थान यथार्थतः मौजूद रहे हों। चूंकि निर्वाचित संस्थान नगण्य थे, अतः यह स्वाभाविक ही था कि कानून और कराधान के पीछे लोकेच्छा या लोक सम्मति का अभाव था। जहाँ नगर पालिकाएँ थीं, वहाँ उनके अधिकांश सदस्य मनोनीत अधिकारी वर्ग में से ही थे। उपरोक्त चारों रियासतों में तो कांग्रेस और हिन्दू महासभा के अतिरिक्त आर्य समाज आदि धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाएँ भी कार्यरत थीं। अधिकतर राजे-नवाब कांग्रेस और तिरंगे झंडे के नाम से आग बबूला हो जाते थे।

जन-जागृति की हवा के कुछ झँके इन्दौर की होलकर रियासत में सन् 1896 से आने लगे थे जब वहाँ सार्वजनिक गणेशोत्सव मनाने की शुरूआत हुई। सन् 1907 में वहाँ जान प्रसारक मंडल बन गया। सन् 1908 में इन्दौर दरबार ने एक आदेश जारी करके ऐसी सार्वजनिक सभाओं में जाने पर पावंदी लगा दी जिसमें राजा या राज्य का विरोध किया जाय। इसी वर्ष लोकमान्य तिलक को कारावास देने का इन्दौर में

विरोध किया गया तो ऐसे आयोजनों का दमन किया गया। सन् 1915 और 1921 में गाँधीजी के इन्दौर आगमन से यहाँ राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। इसी वर्ष यहाँ कांग्रेस की एक शाखा स्थापित करने से राजनीतिक गतिविधि बढ़ी। राज्य प्रजा परिषद बनी और उसने उत्तरदायी शासन की माँग उठाई। सन् 1935 के आसपास प्रजा मंडल की स्थापना की गई। बीच में बहुत से आंदोलन हुए। गिरफ्तारियाँ, लाठी चार्ज, गोली चालन आदि भी रिकॉर्ड पर हैं। मजेदार बात यह है कि सन् 1940 तक इन्दौर में प्रजा मंडल को कानूनी मान्यता नहीं थी। गैरकानूनी प्रजा मंडल ने सन् 1944 का परिषद-चुनाव लड़ा, जिसमें 37 निर्वाचन क्षेत्रों में से 30 पर उसने उम्मीदवार खड़े किये और 28 पर विजय प्राप्त करके 53 सदस्यीय सदन में बहुमत प्राप्त कर लिया। सन् 1945 से 1947 तक आंदोलन होते रहे जिनका कठोरता से दमन किया गया। अंततः 22 अप्रैल, 1948 को ही इन्दौर को आज़ादी मिली जब मध्यभारत राज्य का गठन हुआ। मालवा की सारी रियासतों में जन-जागृति का श्रेय इन्दौर को जाता है जबकि इन्दौर की जागृति के सूत्र समीपवर्ती खंडवा तथा अजमेर में थे।

ग्वालियर

ग्वालियर में लोकसभा और राज्यसभा की तर्ज पर मजलिसे-आम और मजलिसे-खास नामक संस्थान पहले से थे क्योंकि महाराज माधवराव सिंधिया (1876-1925) ने अपने योरूप-भ्रमण में विभिन्न देशों की संस्थाओं-संविधानों के अध्ययन में रुचि ली थी। ग्वालियर में सन् 1917 से एक सार्वजनिक सभा थी, जिसके द्वितीय अधिवेशन का उद्घाटन डॉ. पट्टभि सीतारामैया ने सन् 1939 में किया था। ग्वालियर में प्रजा मंडल की स्थापना सन् 1929 में हो चुकी थी किन्तु उसका पंजीयन नहीं हो सका था। यहाँ भी सन् 1930 में राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा। सन् 1938 में यहाँ सावरकर जी पधारे थे। हिन्दू महासभा का बाकायदा गठन तो सन् 1931 में ही हो चुका था। यहाँ यू.पी. और सी.पी. के नेताओं ने राष्ट्रीय आंदोलनों का संचालन किया। स्थानीय नेतृत्व भी उभरा। उत्तरदायी शासन के आंदोलन सन् 1946 तक चले। खबू दमन हुआ। तमाम प्रदर्शनों, असहयोग आंदोलनों आदि के बाद 20 जनवरी 1948 को उत्तरदायी शासन की घोषणा कर दी गई। बाद को ग्वालियर भी मध्यभारत राज्य का अंग बन गया।

भोपाल

भोपाल रियासत गंगा-जमुनी तहजीब का एक जीवन्त मॉडल रही है। इस हिन्दु-बहुल राज्य में चार मुस्लिम बेगमें और अनेक नवाब हुए जिनके सारे प्रधानमंत्री (दीवान) हिन्दू ही थे। यहाँ धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ थीं, किन्तु राजनीतिक गतिविधियाँ प्रतिवर्धित थीं। यहाँ प्रजा मंडल की स्थापना का इतिहास बहुत दिलचस्प है। भोपाल रियासत में एक संस्था अंजुमन खुदामे-वतन के नाम से चलती थी। सन् 1938 तक खुल्लमखुल्ला कोई प्रजा मंडल नहीं चल पाया। फरवरी 1938 में प्रजा मंडल की विधिवत स्थापना का रिकॉर्ड है। दस साल बाद सन् 1948 में भोपाल प्रजा मंडल का नाम भोपाल कांग्रेस कर दिया गया। यहाँ भी राजनीतिक गतिविधियों का उद्देश्य उत्तरदायी शासन की स्थापना ही था। भोपाल ही एकमात्र ऐसी रियासत थी जो सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद भी दो साल तक नवाब के ही आधीन रही। सन् 1949 में एक खूनी आंदोलन भोपाल के विलीनीकरण के लिए हुआ। यह आंदोलन उदयपुरा तहसील के तहत बोंरासघाट में हुआ जहाँ चार नौजवान हाथ में तिरंगा थामे शहीद हो गये। सोलह से तीस वर्ष की आयु के कई नवयुवक घायल हुए जिनमें से एक का बाद का देहान्त हो गया। अंततः 1 जून, 1949 को ही भोपाल का भारत-संघ में समाजीकरण हो पाया।



बोंरासघाट स्मारक



राजा गुलाबसिंह

रीवा

रीवा रियासत की विशेषता यह थी कि इलाहाबाद के पास होने के कारण वहाँ राजनीतिक जागृति बहुत पहले से थी। वहाँ के राजा गुलाबसिंह का कई कारणों से ब्रिटिश सरकार से विरोध बना रहता था इसलिये उनकी छवि वहाँ प्रबुद्ध शासक के रूप में थी। महाराज स्वयं प्रजा मंडल बनवाते-बिगड़वाते रहते थे। वहाँ भी बहुत से आंदोलन हुए जिनमें अपदस्थ महाराज को पुनः पदस्थ करवाने का आंदोलन भी था। रीवा के बड़े जर्मांदार जिन्हें पवार्डार कहते थे स्वयं प्रजा मंडल और कांग्रेस में शामिल हो गये थे। फिर भी रीवा में आंदोलन हुए जिनमें समाजवादियों की बड़ी भूमिका थी। वहाँ भी प्रजा मंडल का उद्देश्य उत्तरदायी शासन प्राप्त करना ही था जिसकी पूर्ति सन् 1948 में हो गई। जब रीवा रियासत नवगठित विन्ध्यप्रदेश का अंग और उसकी राजधानी बन गई।

अधिकांश रियासतों में कांग्रेस-प्रयोजित प्रजा मंडलों का गठन और उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए आंदोलनों का मॉडल एक जैसा था। सभी जगह राजसत्ता द्वारा राजनीतिक उथल-पुथल और जनाक्रोशों का दमन किया गया किन्तु दमन का मॉडल राजे-महाराजों के व्यक्तित्वों और उनकी प्रवृत्तियों पर निर्भर करता था। रियासतों में प्रजा मंडलों का आंदोलन हमारे स्वतंत्रता संग्राम का एक अल्पज्ञात अध्याय ही है।

- लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं